सवेरे जो कल आँख मेरी खुली

पतरस बुख़ारी

गीदड़ की मौत आती है तो शहर की तरफ़ दौड़ता है, हमारी जो शामत आई तो एक दिन अपने पड़ोसी लाला कृपाशंकर जी ब्रह्मचारी से बातों-बातों में यूँ ही कह बैठे कि "लाला जी, इम्तिहान के दिन क़रीब आते जाते हैं। आप भोर में उठते हैं। ज़रा हमें भी सुबह जगा दिया कीजिए।"

वे महाशय भी मालूम होता है कि अतिरिक्त पुण्य अर्जित करने के लिए भूखे बैठे थे। दूसरे दिन उठते ही उन्होंने ईश्वर का नाम लेकर हमारे दरवाज़े पर मुक्काबाज़ी शुरू कर दी। कुछ देर तक तो हम समझे कि स्वप्नावस्था है। अभी से क्या चिंता, जागेंगे तो लाहौल पढ़ लेंगे। लेकिन यह गोलाबारी क्षण-प्रतिक्षण तेज़ होती गई और साहब जब कमरे की काठ की दीवारें थरथराने लगीं, सुराही पर रखा हुआ गिलास जलतरंग की तरह बजने लगा और दीवार पर लटका हुआ कैलेन्डर पेंडुलम की तरह हिलने लगा तो जागृत अवस्था का क़ायल होना ही पड़ा। मगर अब दरवाज़ा है कि लगातार खटखटाया जा रहा है। मैं क्या मेरे पूर्वजों की आत्माएँ और मेरी सोई हुई क़िस्मत तक जाग उठी होगी। बहुतेरा आवाज़ें देता हूँ। " अच्छा! .....अच्छा! .....थैंक यू! .....जाग गया हूँ.....बहुत अच्छा! कृपा है।" वे महाशय हैं कि सुनते ही नहीं। या खुदा! किस आफ़त का सामना है? ये सोते को जगा रहे हैं या मुर्दे को जिला रहे हैं? और हज़रत ईसा भी तो बस उचित तौर पर हलकी सी आवाज़ में "उठ जा" कह दिया करते थे। ज़िंदा हो गया तो हो गया नहीं तो छोड़ दिया। कोई मुर्दे के पीछे लट्ठ लेके पड़ जाया करते थे? तोपें थोड़ी दागा करते थे? इससे पहले कि बिस्तर से बाहर निकलें दिल को जिस क़दर समझाना बुझाना पड़ता है, उसका अनुमान कुछ नींद के रसिया ही लगा सकते हैं। आख़िरकार जब लैम्प जलाया और उनको बाहर से रौशनी नज़र आई तो तूफ़ान थमा।

अब जो हम खिड़की में से आसमान को देखते हैं तो जनाब सितारे हैं कि जगमगा रहे हैं। सोचा कि आज पता चलाएँगे कि यह सूरज आख़िर किस तरह से निकलता है। लेकिन जब घूम-घूमकर खिड़की में से और रौशनदान में से चारों तरफ़ देखा और बुज़ुर्गों से ब्रह्म-मुहूर्त के जितने लक्षण सुने थे उनमें से एक भी कहीं नज़र न आए तो चिंता सी लग गई कि आज कहीं सूर्य-ग्रहण न हो? कुछ समझ में न आया तो पड़ोसी को आवाज़ दी: " लाला जी!.....लाला जी!"

जवाब आया "हूँ।"

मैंने कहा, "आज यह क्या बात है। कुछ अंधेरा-अंधेरा सा है?"

कहने लगे, " तो और क्या तीन बजे ही सूरज निकल आए?"

तीन बजे का नाम सुनकर होश गुम हो गए। चौंककर पूछा, " क्या कहा तुमने? तीन बजे हैं?"

कहने लगे, " तीन.....तो..... नहीं..... कुछ सात.....साढ़े सात..... मिनट ऊपर तीन हैं।"

मैंने कहा, " अरे कम्बख़्त! ख़ुदाई फ़ौजदार! बदतमीज़ कहीं के! मैंने तुझसे यह कहा था कि सुबह जगा देना। या यह कहा था कि सिरे से सोने ही न देना? तीन बजे जागना भी कोई शराफ़त है? हमें तूने कोई रेलवे गॉर्ड समझ रखा है? तीन बजे हम उठ सका करते तो इस समय हम दादा जी की आँखों के तारे न होते? अबे मूर्ख कहीं के! तीन बजे उठकर हम ज़िंदा रह सकते हैं? अमीरज़ादे हैं कोई मज़ाक़ है। लाहौल वला क़ूवत।"

दिल तो चाहता था कि अहिंसा-वहिंसा का मार्ग छोड़ दूँ। लेकिन फिर ख़याल आया कि मानव जाति के सुधार का ठेका कोई हमीं ने ले रखा है? हमें अपने काम से मतलब। लैम्प बुझाया और बड़बड़ाते हुए फिर सो गए।

और फिर हमेशा की तरह बहुत आराम से भले आदमियों की तरह अपने दस बजे उठे। बारह बजे तक मुँह हाथ धोया और चार बजे चाय पीकर ठन्डी सड़क की सैर को निकल गए।

शाम को वापस हॉस्टल में पधारे। जवानी अपनी उफान पर तो है ही, इस पर शाम की कामोत्तेजक वेला। हवा भी बहुत सुखद थी। मन भी कुछ मचला हुआ था। हम ज़रा तरंग में गाते हुए कमरे में दाख़िल हुए कि

बलाएँ ज़ुल्फ़-ए-जानाँ की अगर लेते तो हम लेते

कि इतने में पड़ोसी की आवाज़ आई, "मिस्टर!"

हम उस वक़्त ज़रा चुटकी बजाने लगे थे। बस उंगलियाँ वहीं पर रुक गईं और कान आवाज़ की तरफ़ लग गए। फ़रमाया, "यह आप गा रहे हैं?" (ज़ोर "आप " पर)।

मैंने कहा, "अजी मैं किस लायक़ हूँ। लेकिन ख़ैर फ़रमाइए।"

बोले, " ज़रा..... वो मैं..... मैं डिस्टर्ब होता हूँ।"

बस साहब। हममें जो संगीत की रूह पैदा हुई थी तुरंत मर गई। दिल ने कहा, "ओ निकम्मे इंसान। देख! पढ़ने वाले यूँ पढ़ते हैं।" साहब, ख़ुदा के हुज़ूर में गिड़गिड़ाकर दुआ माँगी कि, "या ख़ुदा हम भी अब बाक़ायदा पढ़ाई शुरू करने वाले हैं। हमारी मदद कर और हमें हिम्मत दे।"

आँसू पोंछकर और दिल को मज़बूत करके मेज़ के सामने आ बैठे। दाँत भींच लिए। नेकटाई खोल दी। आसतीनें चढ़ा लीं। लेकिन कुछ समझ में न आया कि करें क्या? सामने लाल, हरी, पीली सभी प्रकार की पुस्तकों का ढेर लगा हुआ था। अब उनमें से कौन सी पढ़ें? निर्णय यह हुआ कि पहले पुस्तकों को क्रम से मेज़ पर लगा दें कि बाक़ायदा अध्ययन की पहली मंज़िल यही है।

बड़े आकार की पुस्तकों को अलग रख दिया। छोटे आकार की पुस्तकों को साईज़ के अनुसार अलग पंक्ति में खड़ा कर दिया। एक नोट पेपर पर हर एक पुस्तक के पृष्ठों की संख्या लिखकर सबको जमा किया। फिर 15 अप्रैल तक के दिन गिने। पृष्ठों की संख्या को दिनों की संख्या से विभाजित किया। साढ़े पाँच सौ उत्तर आया। लेकिन चिंता की क्या मजाल जो चेहरे पर प्रकट होने पाए। दिल में कुछ थोड़ा सा पछताए कि सुबह तीन ही बजे क्यों न उठ बैठे। लेकिन अल्प-निद्रा के चिकित्सकीय पहलू पर ग़ौर किया तो फ़ौरन अपने आप को फटकारा। आख़िरकार इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि तीन बजे उठना तो मूढ़ता है। अलबत्ता पाँच, छे, सात बजे के

क़रीब उठना बेहद माक़ूल होगा। सेहत भी क़ायम रहेगी। और परीक्षा की तैयारी भी बाक़ायदा होगी। आम के आम गुठलियों के दाम!

यह तो हम जानते हैं कि सवेरे उठना हो तो जल्दी ही सो जाना चाहिए। खाना बाहर ही से खा आए थे । बिस्तर में दाख़िल हो गए।

चलते-चलते ख़याल आया कि लाला जी से जगाने के लिए कह ही न दें? यूँ हमारी अपनी इच्छा-शक्ति काफ़ी ज़बरदस्त है। जब चाहें उठ सकते हैं। लेकिन फिर भी क्या हर्ज है। डरते-डरते आवाज़ दी, "लाला जी!"

उन्होंने पत्थर खींच मारा, " यस!"

हम और भी सहम गए कि लाला जी कुछ नाराज़ मालूम होते हैं। तुतला के विनती की कि " लाला जी! सुबह आपको बड़ी तकलीफ़ हुई। मैं आप का बहुत आभारी हूँ। कल अगर ज़रा मुझे छह बजे यानी जिस समय छह बजें....."

जवाब नदारद।

मैंने फिर कहा, "जब छह बज चुकें तो.....सुना आप ने?"

चुप।

"लाला जी।"

कड़कती हुई आवाज़ ने जवाब दिया "सुन लिया, सुन लिया। छे बजे जगा दूँगा। थ्री गामा प्लस फोर अलफा प्लस....."

हमने कहा, " ब ब ब बहुत अच्छा। यह बात है।"

तौबा! खुदा किसी का मोहताज न करे।

लाला जी बहुत सज्जन पुरुष हैं। अपने वादे के अनुसार दूसरे दिन छह बजे उन्होंने दरवाज़े पर घूसों की बारिश शुरू कर दी। उनका जगाना तो सिर्फ़ एक सहारा था। हम खुद ही प्रतीक्षा में थे कि यह सपना समाप्त हो ले तो बस जागते हैं। वे न जगाते तो मैं खुद ही एक दो मिनट बाद आँखें खोल देता। बहरहाल जैसा कि मेरा फ़र्ज़ था मैंने उनका शुक्रिया अदा किया। उन्होंने इस प्रकार स्वीकार किया कि गोला बारी बंद कर दी।

उसके बाद का घटनाक्रम थोड़ा बहसतलब सा है और उससे सम्बंधित बयानों में किसी हद तक मतभेद है। बहरहाल इस बात का मुझे यक़ीन है और मैं क़सम भी खा सकता हूँ कि आँखें मैंने खोल दी थीं। फिर यह भी याद है कि एक नेक और सच्चे मुसलमान की तरह कलमा-ए-शहादत भी पढ़ा। फिर यह भी याद है कि उठने से पहले प्रस्तावना के तौर पर एक आध करवट भी ली। फिर का नहीं पता। शायद लिहाफ़ ऊपर से उतार दिया। शायद सिर उसमें लपेट दिया। या शायद खाँसा। कि खुदा जाने ख़र्राटा लिया। ख़ैर, यह तो पक्की बात है कि दस बजे हम बिल्कुल जाग रहे थे। लेकिन लाला जी के जगाने के बाद और दस बजे से पहले खुदा जाने हम पढ़ रहे थे, या शायद सो रहे थे। नहीं, हमारा ख़याल है पढ़ रहे थे। या शायद सो रहे हों। बहरहाल, यह मनोविज्ञान की समस्या है जिसमें न आप माहिर हैं न मैं। क्या पता, लाला जी ने जगाया ही दस बजे हो।

या उस दिन छह देर में बजे हों। ख़ुदा के कामों में हम आप क्या दख़ल दे सकते हैं। लेकिन हमारे दिल में दिन भर यह शक रहा कि क़ुसूर कुछ अपना ही मालूम होता है। जनाब, मेरी शराफ़त तो देखिए कि शिर्फ़ इस शक के आधार पर सुबह से शाम तक ज़मीर की फटकार सुनता रहा और अपने आपको कोसता रहा। मगर लाला जी से हँस-हँसकर बातें कीं। उनका शुक्रिया अदा किया। और इस ख़याल से कि उनका दिल न टूटे, बहुत ज़्यादा संतोष व्यक्त किया कि आप की कृपा से मैंने सुबह का सुहाना और प्राणदायक समय बहुत अच्छी तरह बिताया, वरना और दिनों की तरह आज भी दस बजे उठता। "लाला जी! सुबह के वक़्त दिमाग़ क्या साफ़ होता है। जो पढ़ो ख़ुदा की क़सम फ़ौरन याद हो जाता है। भई, ख़ुदा ने सुबह भी क्या अजीब चीज़ पैदा की है। यानी अगर सुबह के बजाए सुबह, सुबह-शाम हुआ करती तो दिन क्या बुरी तरह कटा करता।"

लाला जी ने हमारी इस जादू बयानी की दाद यूँ दी कि पूछने लगे, "तो मैं आपको छह बजे जगा दिया करूँ न?"

मैंने कहा, " हाँ हाँ। वाह! यह भी कोई पूछने की बात है? बेशक।"

शाम के समय आने वाली सुबह के अध्ययन के लिए दो किताबें छाँट कर मेज़ पर अलग जोड़ दीं। कुर्सी को चारपाई के क़रीब सरका लिया। ओवरकोट और गुलूबंद को कुर्सी की पुश्त पर लटका दिया। कंटोप और दस्ताने पास ही रख लिए। दिया सलाई को तकिए के नीचे टटोला। तीन दफ़ा आयतल-कुर्सी पढ़ी और दिल में निहायत ही नेक मंसूबे बाँधकर सो गया।

सुबह लाला जी की पहली दस्तक के साथ ही झट आँख खुल गई। बहुत ख़ुशमिज़ाजी के साथ लिहाफ़ की एक खिड़की में से उनको, "गुड मॉर्निंग किया" और अत्यंत जाग्रत लहजे में खाँसा। लाला जी संतुष्ट होकर वापस चले गए।

हमने अपनी हिम्मत और बुलंद इरादे को बहुत सराहा। आज हम फ़ौरन ही जाग उठे। दिल से कहा कि, " दिल भैया! सुबह उठना तो सिर्फ़ ज़रा सी बात है। हम यूँ ही इससे डरा करते थे। दिल ने कहा, "और क्या। तुम्हारे तो यूँ ही होश उड़ जाया करते हैं।" हमने कहा, " सच कहते हो यार। यानी अगर हम सुस्ती और काहिली को ख़ुद अपने क़रीब न आने दें तो उनकी क्या मजाल है कि हमारे अनुशासन में दख़ल-अन्दाज़ी करें। इस समय इस लाहौर शहर में हज़ारों ऐसे काहिल लोग होंगे जो लोक-परलोक से बेख़बर नींद के मज़े उड़ाते होंगे और एक हम हैं कि दायित्यों को निभाने के लिए कितनी ख़ुशमिज़ाजी से खिली हुई कली की तरह जाग रहे हैं। भई क्या ख़ुशनसीब और इक़बालमंद हैं हम।" नाक को सर्दी सी महसूस होने लगी तो उसे ज़रा यूँ ही सा लिहाफ़ की ओट में कर लिया और फिर सोचने लगे....."ख़ूब! तो हम आज क्या वक़्त पर जागे हैं। बस ज़रा इसकी आदत हो जाए तो बाक़ायदा क़ुरआन-पाक की तिलावत और फ़ज्र की नमाज़ भी शुरू कर दें। आख़िर मज़हब सब से पहले है। हम भी क्या रोज़-बरोज़ बेधर्मी की तरफ़ उन्मुख होते जाते हैं। न ख़ुदा का डर, न रसूल का ख़ौफ़। समझते हैं कि बस अपने परिश्रम से परीक्षा पास कर लेंगे। अकबर बेचारा यही कहता-कहता मर गया, लेकिन हमारे कान पर जूँ तक न चली....." (लिहाफ़ कानों पर सरक आया) ".....तो यानी आज हम और लोगों से पहले जागे हैं..... बहुत ही पहले.....यानी कॉलेज शुरू होने से भी चार घंटे पहले.....क्या बात

है! कॉलेज के कर्ता-धरता भी किस क़दर सुस्त हैं! हर एक मुस्तैद इंसान को छह बजे तक क़तई जाग उठना चाहिए। समझ में नहीं आता कि कॉलेज सात बजे क्यों न शुरू हुआ करे....." (लिहाफ़ सिर पर) "....बात यह है कि आधुनिक संस्कृति हमारी सारी आतंरिक शक्तियों को जड़ से उखाड़ रही है। ऐशपसंदी दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है....." (आँखें बंद) "..... तो अब छह बजे हैं। तो यानी तीन घंटे तो लगातार पढ़ाई की जा सकती है। सवाल सिर्फ़ यह है कि पहले कौन सी किताब पढ़ें। शेक्सपियर या वर्डस्वर्थ? मैं जानूँ शेक्सपियर बेहतर होगा। उसकी महान रचनाओं में ईश्वर के वैभव व ऐश्वर्य की निशानियाँ दिखाई देती हैं । और सुबह के वक़्त अल्लाह मियाँ की याद से बेहतर और क्या चीज़ हो सकती है?" फिर विचार आया कि दिन को भावनाओं के तुमुल कोलाहल से शुरू करना ठीक दर्शन नहीं। वर्डस्वर्थ पढ़ें। उसके पृष्ठों में मन को शान्ति व तृप्ति प्राप्त होगी और दिल और दिमाग़ नेचर की शांत रमणीयता का हलके-हलके आनंद लेंगे.....लेकिन शेक्सपियर.....नहीं वर्डस्वर्थ ही ठीक रहेगा..... शेक्सपियर..... हेमलेट..... लेकिन वर्डस्वर्थ..... लेडी मैकबेथ..... दीवानगी.....हरियाली.....लैला-मजनूँ.....बसंती पवन.....कामायनी.....कश्मीर..... मैं आफ़त का परकाला हूँ..... ।"

यह मुअम्मा अब आध्यात्मिक दर्शन ही से सम्बन्ध रखता है कि फिर जो हम ने लिहाफ़ से सिर बाहर निकला और वर्डस्वर्थ पढ़ने का इरादा किया तो वही दस बज रहे थे। इसमें न मालूम क्या भेद है!

कॉलेज हॉल में लाला जी मिले। कहने लगे "मिस्टर! सुबह मैंने फिर आपको आवाज़ दी थी। आपने जवाब न दिया।"

मैंने ज़ोर का ठहाका लगाकर कहा, " ओ हो! लाला जी याद नहीं, मैंने आपको गुड-मॉर्निंग कहा था? मैं तो पहले ही से जाग रहा था।"

बोले, " वह तो ठीक है लेकिन बाद में.....उसके बाद.....कोई सात बजे के क़रीब मैंने आपसे तारीख पूछी थी। आप बोले ही नहीं।"

हमने अत्यंत आश्चर्य की नज़रों से उनको देखा। जैसे वे पागल हो गए हैं। और फिर ज़रा गंभीर चेहरा बनाकर माथे पर तेवरी चढ़ाए सोच-विचार में व्यस्त हो गए। एक आध मिनट तक हम इस गहन सोच-विचार की अवस्था में रहे। फिर एकाएक एक लज्जित और मनमोहक अंदाज़ से मुस्कुरा के कहा, " हाँ ठीक है। ठीक है। मैं उस वक़्त...ए...ए...नमाज़ पढ़ रहा था।"

लाला जी रोब खाकर चल दिए और हम अपनी इबादत और तपस्या की विनम्रता में सिर नीचा किए कमरे की तरफ़ चले आए।

अब यही हमारा रोज़मर्रा का मामूल हो गया है। जागना नम्बर एक छह बजे। जागना नम्बर दो दस बजे। इस दौरान लाला जी आवाज़ें दें तो नमाज़!

जब स्वर्गीय दिल में कामनाओं का एक संसार था तो यूँ जागने की तमन्ना किया करते थे कि हमारा नखरीला सिर कमख़्वाब के तकिये पर स्वप्न-मग्न हो, और सूरज की पहली किरणें हमारे काले घुँघराले बालों पर पड़ रही हों। कमरे में फूलों की प्रातःकालीन सुगंध प्राणों को आनंद से भर रही हो। नाज़ुक और हसीन हाथ

अपनी उंगलियों से बरबत के तारों को हल्के-हल्के छेड़ रहे हों और प्रेम में डूबी हुई सुरीली और नाज़ुक आवाज़ मुस्कुराती हुई गा रही हो।

"तुम जागो मोहन प्यारे"

सपनों की सुनहरी धुंध धीरे-धीरे संगीत की लहरों में घुल जाए और नींद टूटे तो एक सुखद तिलिस्म की भांति अँधेरे की बारीक नक़ाब को ख़ामोशी से टुकड़े-टुकड़े कर दे। चेहरा किसी की प्रेमासक्त निगाहों की गर्मी महसूस कर रहा हो। आँखें मुग्ध होकर खुलें और चार हो जायें। मनमोहक मुस्कान सुबह को और भी दीप्तिमान कर दे और गीत, " साँवरी सूरत तोरी मन को भाई" के साथ ही लज्जा व संकोच में डूब जाए।

नसीब यह है कि पहले, "मिस्टर! मिस्टर!" की आवाज़ और दरवाज़े की दनादन कानों में बजती है और फिर चार घंटे बाद कॉलेज का घड़ियाल दिमाग़ के रेशे-रेशे में दस बजाना शुरू कर देता है, और इस चार घंटे के दौरान गड्डइयों के गिर पड़ने, देगचियों के उलट जाने, दरवाज़ों के बंद होने, किताबों के झाड़ने, कुर्सियों के घसीटने, कुकुल्लियाँ और ग़रग़रे करने, खँखारने और खाँसने की आवाज़ें तो जैसे आशु ठुमरियाँ हैं। अंदाज़ा कर लीजिए कि उन साज़ों में सुर-ताल की कितनी गुंजाइश है।

मौत मुझको दिखाई देती है
जब तबीयत को देखता हूँ मैं

***

अनुवादक : डॉ. आफ़ताब अहमद
व्याख्याता, हिंदी-उर्दू, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क